श्रीसमयसार — अब कलश है, ११

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरितरंतोप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंतात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥ ११॥

'जगत् तम् एव सम्यक्स्वभावम् अनुभवतु' जगत के.... अर्थात् **जगत् के प्राणियों!** आहाहा! **जगत के प्राणियों! इस सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो....** आहाहा! जो आत्मा त्रिकाल ज्ञान-आनन्दस्वरूप है, एक समय की पर्याय से भिन्न है... सूक्ष्म बात है भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज है। जो एक समय की पर्याय है... यह आयेगा... उससे अन्तर में चीज — ज्ञायक आनन्द शान्त वीतरागस्वरूप से पूर्ण भरा पड़ा पदार्थ है, उसको यहाँ सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो — ऐसा कहा है। आहाहा! सम्यक् अर्थात् त्रिकाली सत्य वस्तु, तत्त्व, वस्तु त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु का अनुभव करो तो कल्याण होगा, नहीं तो परिभ्रमण नहीं मिटेगा। चौरासी के अवतार करते-करते दुःखी है।

यह पैसेवाले, अरबोंपति और राजा, यह सब दुःखी-भिखारी है, रंक है, रंक — वरांका (भिखारी) कहते हैं। आहाहा! क्योंकि अपनी लक्ष्मी क्या है? — उसका पता नहीं और बाहर की धूल की लक्ष्मी जड़, मिट्टी, धूल... ऐ...ई! हसमुखभाई!... उसे अपना

मानते हैं, वे भिखारी हैं, शास्त्र तो ऐसा कहते हैं — रंक है रंक। आहा! ऐ...ई महेन्द्रभाई! यहाँ तो कहते हैं कि तेरी लक्ष्मी अन्दर चैतन्यस्वभाव में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता आदि अनन्त लक्ष्मी अन्दर पड़ी है। भाई! तुझे पता नहीं है। तेरी एक समय की वर्तमान पर्याय जो व्यक्त-प्रगट है, उसके पीछे — सन्मुख, समीप में सारा तत्त्व पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यक् स्वभाव की व्याख्या! त्रिकाली सत्य स्वभाव, ज्ञायक अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय प्रभुता — ऐसा जो स्थायी असली त्रिकाली स्वभाव (है); तुझे जन्म-मरण का अन्त लाना हो तो प्रभु! आहाहा! **इस सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो....** आहाहा!

वह त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु आत्मा, सद्चिदानन्दस्वरूप वह आत्मा, पूर्णानन्द का नाथ आत्मा अन्दर है, उसके सन्मुख होकर, पर से विमुख होकर... यह बाद में कहेंगे... अपना स्वभाव... भाई! कठिन बात है। अभी तो यह बात गुम हो गयी, ऐसी हो गयी है। धर्म अर्थात् यह दया पालना, व्रत करना, और उपवास करना, और भक्ति (करना) यह धर्म (ऐसा हो गया है परन्तु इनमें) धूल भी धर्म नहीं है। सुन तो सही! समझ में आया? अपना जो असली नित्य स्वभाव, ध्रुव स्वभाव, वर्तमान उत्पाद-व्यय की पर्याय से भी भिन्न स्वरूप (है) आहाहा! अभी कहेंगे कि उत्पाद-व्यय की पर्याय में जो पाँच बोल (गाथा) १४ में कहे, उसका स्पष्टीकरण करेंगे। सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो। प्रभु! यदि तुझे कल्याण करना हो तो (सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो)। आहाहा! महाप्रभु चैतन्यस्वरूप अन्दर पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान आदि स्वभाव से भरा पड़ा भगवान अन्दर है न प्रभु! आहाहा! तुम अन्दर भगवानस्वरूप ही हो। यह तेरा स्वभाव परमात्मस्वरूप ही है और तेरा स्वभाव... आहाहा! पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरपूर वस्तु अन्दर है, भाई! तुझे पता नहीं है। समझ में आया?

दुनिया की चतुराई के कारण चैतन्य की चीज को भूल गया है। दुनिया की सब पागलपन की चतुराई है। क्या कहा? हसमुखभाई! यह तुम्हारे करोड़ों रुपये के पत्थर और धूल और उनमें चतुराई — यह किया और यह किया — सब मूर्खता है। आहाहा! जो वस्तु अन्दर चिदानन्द आनन्दकन्द प्रभु है... सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने भी ऐसा कहा, वह यहाँ कहा

जाता है। प्रभु! तुझे पता नहीं है। तेरी परमात्मशक्ति और वीतरागस्वभावस्वरूप तेरी चीज... आहाहा! यह तुझे तेरा पता नहीं है। आहाहा! तो कहते हैं, एक बार.... यह तो सार, एकदम (सार) ले लिया है। आहाहा! **इस सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो....**

जहाँ.... अब यहाँ आया, उस गाथा में आया था न? चौदहवीं (गाथा में आया था) **यह बद्धस्पृष्टादिभाव....** क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है भगवान! यह राग का सम्बन्ध जो पर्याय में दिखता है, वह सम्बन्ध ऊपर (—ऊपर) है; अन्तर चीज में नहीं। बद्धस्पृष्ट जो राग और विस्रसा परमाणु, वे कर्म होने योग्य जो परमाणु अन्दर है, उससे बद्धस्पृष्ट दिखता है, एक वर्तमान समय की पर्याय देखने से, परन्तु वह चीज अन्तर में नहीं जाती, वह ऊपर-ऊपर रहती है। आहाहा! अरे! अब ऐसा उपदेश! अरे...रे! पर्याय ऊपर रहती है, जैसे पानी के दल में तेल की बूँद गिरती है, तेल की (बूँद), वह ऊपर रहती है (पानी में) अन्दर प्रवेश नहीं करती।

श्रोता : चमड़ी के ऊपर ऊपर रहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चमड़ी नहीं, अन्दर में पर्याय सारे असंख्य प्रदेश के ऊपर पर्याय रहती है।

यह तो पहले कहा था (आत्मा में) असंख्य प्रदेश हैं। प्रभु! सूक्ष्म बात है भाई!

श्रोता : ऊपर-ऊपर कैसे रहती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहते हैं न! असंख्य प्रदेश जो अन्दर ध्रुव हैं और असंख्य प्रदेशों के ऊपर एक समय की पर्याय है। राग के सम्बन्धवाली, अनियत, अनेक-अनेक — भिन्न-भिन्न पर्याय होती है वह। (आत्मा) अबद्धस्पृष्ट, नियत, अनन्य (है)। नारकी गति आदि, नरक गति आदि जो अन्य-अन्य वह पर्याय में ऊपर-ऊपर है और (आत्मा) असंयुक्त है, राग से संयुक्त नहीं परन्तु पर्याय में आकुलता के सहित दिखाई देता है और उसमें विशेष-गुणभेद भी नहीं, आहाहा! और विशेष-गुण की विशेषता, वह भी ऊपर-ऊपर तैरती है, अन्दर नहीं जाती है। आहाहा! सूक्ष्म बात भाई!

धर्म-वीतराग जिनेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक है! वर्तमान में तो बाह्य में पूरी बात खो गयी, मानो कि....! आहाहा! आहाहा!

श्रोता : आपने शोधकर निकाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहते हैं, यह खुली वस्तु है प्रभु! तुझे पता नहीं न, भाई! यह साधु नाम धराते हैं, उन्हें भी पता नहीं क्या चीज है? नाम धराते हैं और लोग मानते हैं परन्तु अन्तर (में स्वरूप का) साधन करना, जो अन्तर (में) राग से भिन्न, इन पाँच बोल से — अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, असंयुक्त, अविशेष और नियत — इन पाँच प्रकार से (द्रव्यस्वभाव) पर्यायों के भेद से भिन्न है। ये (पर्यायें) ऊपर-ऊपर हैं, अन्दर द्रव्यस्वभाव में ये चीज नहीं जाती। आहाहा!

यह क्या कहते हैं? पहला तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, इच्छामि पडिक्कमा, मिच्छामी दुक्खणं — जाओ! यह धूल में भी नहीं। सुन तो सही अब! आहाहा! यहाँ कहते हैं **यह बद्धस्पृष्टादिभाव**.... यह क्या कहा? राग का पर्याय में जो सम्बन्ध है और पर्याय में अनियतता अर्थात् अनेक प्रकार की — विविध पर्याय उत्पन्न होती है और विशेषता जो गुण की, गुणी तो त्रिकाली है, उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र विशेषता भी ऊपर-ऊपर है, पर्याय में है। आहाहा! और राग तथा द्वेष की आकुलता — यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम — यह सब आकुलता है। आहाहा! यह आकुलता ऊपर-ऊपर रहती है; आनन्द के नाथ में अन्दर प्रवेश नहीं करती। आहाहा!

श्रोता : अखण्ड पदार्थ में ऊपर क्या और नीचे क्या?

समाधान : यह तो कहा न? जैसे पानी के दल में तेल की बूँद पड़ी है, वह ऊपर रहती है, अन्दर नहीं जाती, वैसे...

श्रोता : पदार्थ तो अखण्ड है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड है, वह द्रव्यरूप से अखण्ड है; पर्यायरूप से खण्ड — भेद है। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई!

परम सत्य! कोई सर्वज्ञ जिनेश्वर परमेश्वर ने कहा जो सूक्ष्म परम तत्त्व, (वह) कोई अलौकिक बात है। लोगों को बेचारों को अभी नहीं मिलती। बेचारे अर्थात्? भले वह अरबोंपति हो और राजा हो परन्तु वह सब बेचारे भिखारी हैं। अपनी चीज का पता नहीं, वह चलता मुर्दा है। अष्टपाहुड़ में कहा है, अपनी चीज अन्दर चिदानन्द अखण्ड

आनन्द का कन्द ध्रुव क्या चीज है — उसका पता नहीं वह चलता मुर्दा है। अष्टपाहुड़ में आया है। अष्टपाहुड़ शास्त्र है, उसमें आया है। आहाहा! बाहर में सब शरीर, पैसा, मकान, बड़ा पचास-पचास लाख का बंगला हो और सत्तर लाख का (बंगला हो)। हम वहाँ मुम्बई उतरे थे न, आमोद के हैं न? आमोद के, आमोद के रमणीकभाई, उस कम्पनी का नाम क्या है, वह भूल गये। क्या है? रौनक कम्पनी। अपने को कुछ नाम नहीं आता, वह आमोद के — हमारे पालेज के पास... पालेज (में) हमारी दुकान थी न, हैं न, अभी भी है न, पालेज के पास आमोद है। वे आमोद के वहाँ हैं। पाँच-छह करोड़ रुपये (है)। सत्तर लाख का तो एक बंगला, जिसमें हम उतरे थे, जयन्ती थी, न किस वर्ष की? - ८७, ८७, ८७ वीं जयन्ती शरीर की थी न, अभी तो ८९ हुआ। तब उनके मकान में उतरे थे, पन्द्रह दिन रहे थे।

श्रोता : बड़ी आनन्द की जगह होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं, वहाँ मैंने तो उसको उस समय ऐसा कहा था कि यह एक समुद्र नजदीक है, अत्यन्त नजदीक है, समुद्र के किनारे सत्तर लाख का बंगला है। एक बंगला सत्तर लाख का, देखा है या नहीं गोदिकाजी! वहाँ आये थे न सब वहाँ आये थे। नजदीक में समुद्र है, वहाँ बगुला उड़ता था, बगुला, यह बगुला नहीं? कबूतर (जैसा), तो इतने उड़ते थे, उड़ते थे, मछली खाने को। मैंने उनसे पूछा भाई! यह बगुले कहाँ तक जाते हैं? कि समुद्र में बीस मील तक जाते हैं। बीस मील तक मछली लेने को (जाते हैं)। आहाहा! अद्धर, वृक्ष नहीं, कुछ नहीं, आहाहा! वे अद्धर से बीस मील तक जाते हैं, जहाँ तक मछली पूरी नहीं मिले (जाते हैं) और फिर नरक में जाना है। प्रभु! अर...र...! आहाहा! वे तो नरक में जानेवाले हैं। और उस नरक की पीड़ा... प्रभु! तू अनन्त बार गया है। भाई! तुझे पता नहीं है। उस नरक की एक-एक क्षण की पीड़ा, दुःख-भगवान कहते हैं कि करोड़ों जीभ और करोड़ों भव से नहीं (कहे जा सकते) प्रभु! ऐसे दुःख की वेदना तूने सहन की है परन्तु तेरी चीज क्या है, कभी उसकी पहिचान नहीं की है। आहाहा! दुनिया के होशियार हो गये और दस-दस हजार — बीस-बीस हजार का मासिक वेतन और पाँच-पाँच लाख की मासिक आमदनी और उसमें — धूल में आया क्या? आहाहा! ए... रंगुलालजी! आहाहा!

यहाँ कहते हैं ये भाव तेरे विकल्प हों — शुभ-अशुभराग; और पर्याय में अनियतता अर्थात् एकरूप दशा न हो, वह और पर्याय में राग और आकुलता हो, वह सब ऊपर-ऊपर है, पर्याय में है, अवस्था में है; वस्तु जो ध्रुव है, उसमें वे नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बातें भाई! पहले तो सुनने को ही नहीं मिलती बापू! क्या करें? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर का यह हुक्म है। परमेश्वर (सीमन्धरनाथ) भगवान तो वहाँ — महाविदेह में विराजमान हैं, यह उनकी आज्ञा का मार्ग है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर परमात्मा!

श्रोता : हमें तो आप बता रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य गये थे (संवत्) ४९ (में वहाँ गये थे) आठ दिन रहे थे, साक्षात् समवसरण में इन्द्र सुनने को आते हैं, जंगल में से अभी बाघ और सिंह आते हैं, वहाँ कुन्दकुन्दाचार्यदेव गये थे। सवंत् ४९ (में) २००० वर्ष पहले (गये थे)। समझ में आया? आहाहा! वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं। यह भगवान का सन्देश है। आहाहा!

श्रोता : आप भी वहीं थे, स्वामी जी! आप भी वहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब हमारी उपस्थिति तो समवसरण में थी परन्तु यह सूक्ष्म व्यक्तिगत बात है। यह तो तात्विक बात कहना है। समझ में आया? वहाँ समवसरण में हमारी उपस्थिति थी, वहाँ से हम यहाँ आये हैं। समझ में आया? यह जरा व्यक्तिगत बात है, व्यक्तिगत बात का विश्वास आना यह जरा सूक्ष्म है। यह तो अपने तात्विक बात की चर्चा है। समझ में आया? यहाँ तो तात्विक बात कहते हैं। उस व्यक्तिगत बात का कुछ उसका.... क्योंकि वह चीज दूसरी है भैया! वह तो अन्तर की चीज है।

यहाँ कहते हैं कि बद्धस्पृष्ट जो पाँच बोल कहे.... अपने बहुत चले, बहुत दिन से चलते हैं — ये पाँच बोल। **'एत्य स्फुटम् उपरि तरन्तः'** आहाहा! **स्पष्टतया उस स्वभाव के ऊपर तरते हैं,....** क्या कहते हैं? आहा! जैसे वह जल का दल है — पच्चीस मण, पचास मण, पानी का दल और उसके ऊपर तेल की बूँद डाले तो वह दल में प्रवेश नहीं करती, ऊपर-ऊपर रहती है, चिकनाहट पानी के दल के पिण्ड में प्रवेश नहीं करती। आहाहा! वैसे ही भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द और शान्तरस का पिण्ड प्रभु आत्मा,

उसके ऊपर यह राग-द्वेष आदि पाँच बोल हैं, वे ऊपर तिरते हैं, अन्दर में नहीं जा सकते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? ऐसा यह उपदेश किस प्रकार का, हसमुखभाई? वहाँ तुम्हारे खान के वे पत्थर, थाने में क्या कहलाता है तुम्हारे वह तख्ती पत्थर की, वहाँ उतरे थे न, हम तुम्हारे मकान में! भाई थे न पोपटभाई, धूल में भी वह कुछ नहीं हुआ वहाँ। १५-१५ लाख के २०-२० लाख के मकान और यह बड़ी आमदनी और सब धूल है, सब चार गति में भटकने के रास्ते हैं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा... शरीर, वाणी, कर्म, पैसा यह चीज तो बाहर दूर रह गयी, यह तो इसकी पर्याय में भी नहीं। क्या कहा? यह शरीर तो मिट्टी, धूल की धूल है, यह तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं है। पैसा-वैसा (तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं है) गोदिकाजी! यह तुम्हारे करोड़ों रुपये-बुपये यह आत्मा की पर्याय में नहीं है। स्त्री, पुत्र, परिवार, धूल और मकान — यह सब तेरी पर्याय में भी नहीं। पर्याय समझे? अवस्था, वर्तमान अवस्था में भी नहीं है। आहाहा!

यह जो अवस्था — जो बद्धस्पृष्ट आदि पाँच बोल की दशा है, वह पर्याय में है; नहीं है — ऐसा नहीं परन्तु वह ऊपर-ऊपर रहती है। त्रिकाली द्रव्य आनन्द का नाथ भगवान सद्चिदानन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर — जिनेश्वर ने देखा वह, हाँ! अन्य लोग कहते हैं वह वस्तु नहीं, यह वस्तु उन्हें कहीं हाथ भी नहीं आयी। यह तो जिनेश्वर, त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतराग ने जो अन्दर आत्मा (देखा) कहा.... आहाहा! ऐसी चीज हो ध्रुव आत्मा, ध्रुव आत्मा, ज्ञायक आत्मा, भाव स्वभाव शुद्धस्वभावरूप आत्मा (है), उसमें यह पाँच प्रकार की पर्याय कही, (वह) ऊपर-ऊपर तैरती है। देखो! **स्पष्टतया....** प्रत्यक्ष यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! **उस स्वभाव के ऊपर तरते हैं....** यह क्या कहते हैं? आहाहा! नित्यानन्द प्रभु अन्दर स्थायी परम सत्य त्रिकाल टिकनेवाली चीज में वर्तमान पर्याय की यह दशा ऊपर रहती है, अन्दर नहीं जा सकती। आहाहा! समझ में आया? पर्याय है —

यह शरीर, वाणी, मन तो धूल और पर (है)। इसकी तो यहाँ बात नहीं है, यह तो इसकी पर्याय में भी नहीं है परन्तु इसकी पर्याय — हालत वर्तमान हालत में पाँच बोल हैं।

राग का सम्बन्ध, अनियत, अनेक-अनेक प्रकार का भिन्न-भिन्नपना, विशेषपना, अन्य-अन्य गतिपना और संयुक्त अर्थात् विकार की दशा की आकुलता का संयुक्तपना, यह पर्याय में है, वर्तमान दशा की अवस्था में है। समझ में आया? जैसे स्वर्ण / सोना है, वह जो सोना है वह तो पीलापन और चिकनेपन से भरा पदार्थ, वह कायम है और उसका कुण्डल, कडा, अंगूठी होती है, वह अवस्था है, वह अवस्था सोने के त्रिकाली स्वभाव में प्रवेश नहीं करती, अवस्था! अरे... अरे...! ऐसा है, समझ में आया? भाई! धर्म समझना कोई अपूर्व बात है, बाकी यह पैसा मिलना, अरबोंपति और राजा (होना) भी अनन्त बार मिला, यह कोई नयी चीज नहीं है। यह तो भटकने का भाव — चार गति में रुलने का भाव और वह चीज तो अनन्त बार मिली। आहाहा! परन्तु यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ कहते हैं, वह (बात) सन्त आडतिया होकर जगत के सामने माल रखते हैं। आहाहा!

श्रोता : भगवान में यह गड़बड़ भरी किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या? भरी नहीं न? किसने भरी है? पर्याय में है, उसकी दशा में है, अन्दर में नहीं भरा है। यह बात तो चलती है। गड़बड़ पर्याय में खड़ी की है, वह है इसकी दशा में, वस्तु में नहीं। आहाहा! वस्तु शब्द से त्रिकाली चीज... आहाहा! त्रिकाली तो अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु ध्रुव (है), उस पर ऊपर-ऊपर पर्याय है, ध्रुव में कैसे जा सकती है? आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है, प्रभु! क्या हो?

अभी तो यहाँ बहुत लोग आयेंगे तो सबको यह समझना पड़ेगा, प्रभु! बाहर में धूल में कुछ नहीं, हाँ! मर जाएगा। यह बनिया बड़ा व्यापारी होता है न, यह माँस और शराब नहीं खाता (-पीता) परन्तु व्यापार के आर्तध्यान और रौद्रध्यान के परिणाम में यह मरकर पशु होनेवाले हैं — ढोर, मछली के पेट में और बकरी के पेट में या कुतिया के पेट में जानेवाले हैं। आहाहा! ए...धन्नालालजी! व्यापार के धन्धे के पाप (में) इतने तो लीन, लीन और आर्तध्यान — रौद्रध्यान... अभी धर्मश्रवण करने का दो चार घण्टे का भी (समय) नहीं है और धर्म तो है नहीं परन्तु धर्मश्रवण - सत्श्रवण क्या है — उसके लिए चार घण्टे दिन में निकालना तो नहीं, एक आधा घण्टा-एक घण्टा मिला वह भी उसे कुगुरु मिला — ऐसी बात। ऐसे तुम व्रत करो और तप करो (ऐसा कहकर) कुगुरु उसमें एक घण्टा लूट लेता है। समझ में आया? ए...!

श्रोता : क्या करें साहब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं, क्या करें ? उसकी दृष्टि छोड़कर अन्दर द्रव्य में जाना वह करना है। आहाहा!

श्रोता : आप जाने की विधि बता दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहते हैं न यह...

हमारा तो भागीदार था, भाई (था), बुआ का लड़का, उससे भी मैंने कहा था — ६६ की साल (में) कहा न, ६६ की साल, ६६ कितने वर्ष हुए ? (संवत्) १९६६ है ? ६८ वर्ष पहले कहा था, मेरी उम्र २० वर्ष की थी, अभी ८९ चलता है। इस जन्म के, हाँ! गर्भ के तो ८९ पूरे हो गये। सवा नौ महीने, वहाँ से गिनने में आते हैं न ? वह ९० चलता है। उस समय हमारा भाई था और बड़ी दुकान थी, दो दुकानें हैं। अभी बड़ी दुकान है, ३५-४० लाख रुपये हैं, दुकान है। हमारे पिताजी की दुकान थी और दूसरी हमारे बुआ के लड़के की थी। ३५-४० लाख रुपये अभी हैं, ३-४ लाख की आमदनी है। अभी पालेज में (है), भरूच और बड़ोदरा के बीच (पालेज है)। मैंने भी वहाँ पाँच वर्ष दुकान चलायी थी, १७ से २२ वर्ष की उम्र में संवत् १९६३ से १९६८ (तक) चलायी थी, परन्तु यह कहा मैंने तो कहा था। उसमें उसको — भाई को (कहा था), मैं तो पहले से — छोटी उम्र से भगत कहलाता था। मैंने तो उसे कहा था, मैं दुकान की गद्दी पर बैठा था, कुँवरजी मुझसे चार वर्ष बड़े थे, मुझे ९० वर्ष (हुए) उनको ९४.... (कहा था..) मरकर तिर्यंच होने जायेगा, यह ध्यान रखना तुम। हम बनिये हैं - इसलिए माँस और शराब और अण्डे तो खाते नहीं, इसलिए नरक में तो नहीं जायेंगे। यह याद रखो कहा। ए...गोदिकाजी! यह ६६, संवत् १९६६ (की बात है)।

श्रोता : आपका अनुयायी तो कहीं नहीं जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अनुयायी कहाँ है ? यह आत्मा का अनुयायी हो, यह तो जिसे दो चार घण्टे सुनने में मिला है, संस्कार है, वह प्राणी तो स्वर्ग में ही जायेगा, परन्तु यहाँ जिसे संस्कार भी नहीं, कुछ सुनने में सत् आया नहीं और बाहर में ऐसी सिरपच्ची — घाणी में पिले ऐसे आत्मा को पेल दिया है, राग और द्वेष में, आहाहा! वह प्राणी तो.... कहा

मैंने उससे कहा था — याद रखो, कहा.... बोले नहीं मेरे सामने, मैं तो भगत कहलाता था छोटी उम्र से हमारी दुकान तो चलती थी, मैं तो शास्त्र पढ़ता था, पढ़ता था। (मैंने कहा) तिर्यंच में जाएगा, तुझे देव होना मुझे तो लगता नहीं और मनुष्य होना मुझे नहीं लगता, तू मनुष्य हो, बोले नहीं, आहाहा! एक तिर्यंचगति और हुआ ऐसा, मरते समय ऐसे बहुत पैसा कमाने में दो-दो लाख की आमदनी, दस-दस लाख रुपया छोड़कर गया। अब तो अभी बढ़ गया था। मैंने किया, मैंने किया — ऐसी दुकान चलायी, व्यवस्था की.... धूल भी नहीं है सुन न! तूने क्या किया? तूने किया अज्ञान, राग, द्वेष। ए... महेन्द्रभाई!

श्रोता : आपको कैसे पता चला कि वह पशु में गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, यहाँ गति नहीं, ऐसा। तेरा लक्षण नहीं दिखता, कहा। हम उस समय भी शास्त्र पढ़ते थे न, हम दुकान चलाते थे, जब भागीदार वहाँ गद्दी पर बैठा हो, तब हम अन्दर पढ़ते थे, भागीदार न हो तो हमें दुकान पर बैठना पड़े यह तो ६३ से ६८ की बात है। संवत् ६३ से ६८। कितनों का तो उस (समय) जन्म भी नहीं हुआ होगा अभी। आहाहा! हमको तो पूर्व के संस्कार थे न तो ऐसा कहा — हम मनुष्य हैं, बनिये हैं, और माँस-दारू नहीं और देव में जाने के लक्षण मुझे लगते नहीं क्योंकि तेरा पुण्य का परिणाम ऐसा नहीं है। और मनुष्य होने की योग्यता मुझे नहीं दिखती या ऐसा भी तेरा विनयपना, कषाय की मन्दता भी नहीं दिखती। (कुछ) बोले नहीं।

श्रोता : सामने कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : सामने कहा था, और बैठै थे न, गद्दी पर बैठे थे न, कहा न हमारी दो दुकानें थीं। दो दुकान, तीस लोग थे, एक रसोई में भोजन करते थे, तो एक दुकान में भोजन करने को गये तो वहाँ मुझसे ऐसा बोलना हो गया। वहाँ मेरा बड़ा भाई भी बैठा था, वह तो सरल था। मेरा बड़ा भाई और वे, उनके बड़े भाई और मैं, दो दुकानें थी। कहा — पूरे दिन यह आर्तध्यान, सुना है कोई धर्म क्या चीज है या किस गाँव में साधु आये तो रात्रि में आठ बजे के बाद जाये, दिन में सामने देखे नहीं, गाँव में साधु आये हों तो.... वह माने हुए साधु उनके सम्पद्राय के, जो कि साधु हैं नहीं। समझ में आया? परन्तु उनकी स्थिति बाहर में ऐसी (थी कि) साधु आवे तो भी न जाये, रात्रि को आठ बजे जाये।

कहा, यह क्या लगा रखी है पूरे दिन तूने ? दुनिया भले ही चतुर (कहे) और दुनिया के सब महिमा करे पागल व्यक्ति, पागल महिमा करे इससे तेरी रिपोर्ट — परिणाम आ गया ? उसका क्या कहलाता है वह रिपोर्ट, क्या कहलाती है ? सर्टीफिकेट, यह सब पागल तुझे सर्टीफिकेट दे कि ओ...हो... ! बहुत तुमने बहुत किया। आहाहा ! पैसा कमाया और उसमें से तुमने पाँच हजार दिये और दस हजार दिये और उसमें भी वापस मान हो, वहाँ मेरा नाम सामने रखना, तख्ती में..... इतनी अधिक तख्ती लगाते हैं। यह तो तेरा पुण्य का भी ठिकाना नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि वह चीज तो कहीं दूसरी रही परन्तु यहाँ तो पर्याय में जो पाँच बोल हैं, प्रभु ! तेरी चीज वह अन्दर आनन्द का नाथ भगवान पूर्णानन्द प्रभु है, उसमें ये हैं ही नहीं। आाहाहा ! उसकी दृष्टि कर, उसका अनुभव कर ! तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा और तब जन्म-मरण का अन्त आयेगा, नहीं तो अन्त नहीं आयेगा। आहाहा ! समझ में आया ?

यह कहते हैं। क्या यह देखो, आहाहा ! **ऊपर तरते हैं....** तिरते हैं। है या नहीं अन्दर ? **'स्फुटम् उपरि तरन्तः'** आहाहा ! यह क्या कहते हैं ? शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, पुत्र ऊपर तरते हैं, यह तो बात है ही नहीं, वे तो दूर रहते हैं। पर्याय में रहे, आहाहा ! गोदिकाजी ! आहाहा ! यह अमेरिका में जाते हैं न कमाने... कमाने.... कमाने; आर्तध्यान और पैसा आवे दो-चार लाख आवे, जाकर आवे वहाँ.... अब धूल में यह कहाँ तेरे लाख क्या, करोड़ आये तो भी क्या चीज है। यहाँ तो कहते हैं वह चीज तो दूर रह गयी, वह आत्मा की पर्याय में भी लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब परिवार तो है नहीं, परन्तु तेरी पर्याय में वह वस्तु नहीं, परन्तु उस पर्याय में रागादि है, आकुलता का भाव है, वह त्रिकाली आनन्दकन्द में उसके ऊपर-ऊपर है, अन्दर में नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? है ? क्या कहते हैं ?

तथापि... क्या कहते हैं ? अभी तो पर्याय का नाम सुना नहीं होगा। सारी जिन्दगी मजदूर की तरह निकाली, बड़ा मजदूर ! अन्य मजदूर तो अभी सबेरे आठ से बारह — चार घण्टे काम करते हैं और दोपहर दो से छह (काम करते हैं)। यह मजदूर सबेरे से छह बजे उठता है और रात्रि के आठ बजे तक.... अरे ! वह तो चार घण्टे में तो आधा घण्टा दूसरा निकाल डालता है, बीड़ी पीता है और पेशाब करने जाना है और यह तो भाईसाहब बैठे

दुकान में और रात के आठ.... आहाहा! बड़ा मजदूर! ए... हसमुखभाई! यहाँ तो यह बात है बड़ा मजदूर अर्थात् यह मजदूरी नहीं। समझते हैं, बड़ा मजदूर, लो बड़ा मजदूर, यह सब व्यापारी आदि हैं, वे बड़े मजदूर हैं। सबेरे से शाम तक काम करते हैं, अकेला पाप... पाप... पाप... पाप... यहाँ तो कहते हैं कि यह पर की क्रिया कर नहीं सकता, परन्तु अपनी पर्याय में जो राग-द्वेष आदि आया, आहाहा! वह पर्याय भी ऊपर रहती है, द्रव्यस्वभाव में नहीं जाती। आहाहा! समझ में आया?

तथापि वे (उसमें) प्रतिष्ठा नहीं पाते,.... आहाहा! यह राग, द्वेष, पुण्य और पाप पर्याय में अनेकता की विविधता और गुण की विशेषता यह अन्दर में शोभा नहीं पाते, अन्दर में प्रविष्ट नहीं हो सकते, इनको अन्दर में आधार नहीं मिलता। आहाहा! ऐसी चीज है।

श्रोता : महाराज! ध्रुव स्वभाव का क्या बिगड़ा?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव तो ऐसा का ऐसा है, पर्याय में बिगाड़ है और पर्याय में दुःख है, पर्याय में संसार है। समझ में आया? वस्तुस्वभाव तो ऐसा का ऐसा ही है — ऐसा बिगाड़ हो तो वह पर्याय में है, संसार पर्याय में है, राग-द्वेष पर्याय में है, संसार परिभ्रमण पर्याय में है, दुःख पर्याय में है, वस्तु उससे भिन्न स्थायी है, चाहे जितना पर्याय में दुःख आया, वस्तु तो आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्यघन रही है। आहाहा! ऐसी बात है न? आहाहा!

भाई! तुझे तेरी चीज का पता नहीं और कहाँ-कहाँ तू.... वह मृग होता है न — हिरन, उसकी नाभि में कस्तूरी होती है, नाभि में, परन्तु गन्ध आती है तो वह जानता है कि बाहर से आती है, बाहर भ्रमता है, ऐसे आनन्द तो अन्दर में है, परन्तु मानो बाहर से आनन्द मिलता है, पैसे में से, स्त्री में से, लड़के में से, परिवार में से (आनन्द मिलता है...) धूल में भी नहीं है। सुन तो सही, आहाहा! रंगूलालजी! आहाहा! यहाँ तो भगवान तीन लोक का नाथ, (ने) जाना ऐसा कहा, वैसा सन्त अनुभव करके कहते हैं। आहाहा! प्रभु! भगवानरूप से ही बुलाते हैं, आचार्य तो, आत्मा भगवानस्वरूप अन्दर है। आहाहा! तेरा भगवानस्वरूप जो अन्दर है, उसमें यह पर्याय की पामरता अन्दर प्रवेश नहीं करती, यह पर्याय की शोभा अन्दर में नहीं जा सकती; आत्मा उसको शोभा नहीं देता, आहाहा! है? **प्रतिष्ठा नहीं पाते,....** अर्थात् शोभा नहीं होती।

क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है.... जो वस्तु-द्रव्यस्वभाव पदार्थ है, वह तो नित्य कायम है। आहाहा! भाषा तो सादी है परन्तु वस्तु तो अलौकिक है बापू! अरे! बेचारे को (सुनने को) नहीं मिलती अभी तो.... आहाहा! पूरे दिन मजदूरी कर-करके मरकर चले जानेवाले हैं। आहाहा! यह छिपकली यहाँ घूमती है न, और बहुत घूमती है इसलिए एकदम विचार आ जाता है, छिपकली, खिसकोली क्या कहते है? गिलहरी है? स्वाध्याय मन्दिर में बहुत घूमती है, बहुत चारों ओर फिर यह तो कहा कौन? बहुत घूमता है वहाँ कायम बहुत महीने हुए, कौन जाने कहाँ का जीव होगा, कहा यह। छिपकली बहुत फिरती है। आहाहा! अरे...रे! इसका आत्मा कहाँ, कहाँ की हुई दशा, कहाँ यह मनुष्यपना पावे, आहाहा! और कब यह विचार सुनने में आवे और सुनने में आने के बाद अन्दर अमल में कब आये? अर...र...! है?

भगवान आत्मा का त्रिकाली तो नित्य स्वभाव है। है? एकरूप — दो, एक तो त्रिकाली नित्य है और एकरूप है। पर्याय अनित्य है और अनेकरूप है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो भगवान जिनेश्वरदेव की धर्म कथा की बात है। बापू! यह कोई 'चीड़िया लाई चावल का दाना, चिड़ा लाया मूँग का दाना, बनायी खिचड़ी और....' यह ऐसी कथाएँ चलती हैं अभी तो - व्रत करो, अपवास करो, और यह करो... धूल भी नहीं सब, सुन न....!

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव इन्द्रों के समक्ष ऐसा कहते थे। इन्द्र, जो एकावतारी जिनकी सभा में (समवसरण में) भगवान के पास जाते हैं, अभी महाविदेह में विराजमान हैं, उनके समक्ष यह कहते थे, उसमें कहीं कोई इन्द्र हो और रंक हो यह उसमें अन्तर है? सब एक है, वह तो बाहर की पर्याय है। आहाहा!

यह द्रव्य स्वभाव तो नित्य है। क्या कहते हैं? पर्याय में-अवस्था में पर्याय की अनेकता और राग का सम्बन्ध वह अनित्य है और अनेक है। जबकि वस्तुस्वभाव नित्य है और एक है। अरेरे! ऐसी बातें हैं। नित्य एकरूप है **और वे भाव अनित्य हैं।** देखो, दोनों आये, देखो! पर्यायें अनेक हैं और अनित्य है, देखा? वस्तुस्वभाव जो त्रिकाली नित्य है और एकरूप है — सदृश स्वभाव एकरूप है, जबकि पर्याय अनेक है

और अनित्य है, यह (द्रव्यस्वभाव) नित्य और एक है, आहाहा! **पर्यायें द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती,.....** आहाहा!

शरीर, वाणी, कर्म और स्त्री, पुत्र, परिवार तो कहीं (दूर) रह गये। कहीं आत्मा में वे हैं नहीं। पर को अपना मानता है, वह महामूर्ख है। आहाहा! जगत् की चीज है, वह तो जगत् की चीज है। यह मेरी स्त्री और मेरा पुत्र हुआ — यह तेरा कहाँ से हुआ? इसे सन्निपात लगा है। आहाहा! ऐसी बात है बापू यहाँ तो! आहाहा! है? सन्निपातवाला दाँत निकालता है तो क्या वह सुखी है? दुःखी है। हमारे यह मजा है। किसका मजा धूल में? सन्निपाती दाँत निकालकर प्रसन्नता मानता है, है दुःखी। इसी प्रकार यह पैसा, स्त्री, पुत्र के सम्बन्ध में बैठा हो मानो, आहाहा....! सात-आठ लड़के हों और स्त्री बैठी हो और लड़कियाँ बैठी हों और दामाद बैठे हों.... मानो बड़ी बातें करता हो होंश... होंश... हो...हो... सब हमने तो देखा है न सब। आहाहा! प्रभु! तेरी अनित्यता, वह ऊपर-ऊपर रहती है। आहाहा!

यह शुद्ध स्वभाव सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान हैं।.... यह क्या कहते हैं? प्रत्येक अवस्था, भले रागवाली हो, आकुलतावाली हो, विशेषता हो — प्रत्येक अवस्था में यह शुद्धस्वभाव तो अन्दर प्रकाशमान पड़ा ही है। आहाहा! वहाँ दृष्टि देने से अनुभव होता है, यह बात है... सम्यग्दर्शन होता है — सत्यदर्शन! बाकी सब व्यर्थ हैं। समझ में आया? यह सम्यक्स्वभाव जो त्रिकाल है, शुद्ध स्वभाव सर्व अवस्थाओं में एकरूप त्रिकाल प्रकाशमान है। आहाहा! सर्व, है?

श्रोता : इस ध्रुव को सम्यक् स्वभाव कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव का त्रिकाल सम्यक्स्वभाव, नित्य... नित्य... अन्दर नित्य स्वभाव... उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है न? तो जो ध्रुव है, वह उत्पाद-व्यय में नहीं आता और उत्पाद-व्यय वहाँ नहीं जाते। आहाहा! ध्रुव है, वह नित्य है और एकरूप है; पर्याय अनित्य है और अनेकरूप है। यह अनेक और अनित्यता, नित्य और एकरूप में प्रवेश नहीं करते। आहाहा!

क्या गाथा! आहाहा! मक्खन है! मक्खन निकालते हैं न! ऐसे रखते हैं मक्खन छाछ

में से तो ऐसे छाछ नितर जाती है मक्खन ऊपर रहेगा। वह अड़कर नहीं होता, हाँ! बहुत मक्खन होता है न, दही में से मण दो मण, बाद में निकाले ऐसा करते हैं न, नीचे छाछ निकल जाती है मक्खन रह जाता है। इसी प्रकार पर्यायबुद्धि निकल जाती है और द्रव्यबुद्धि अकेली रह जाती है। आहाहा! ऐसी बात है। भाई! मार्ग कठिन पड़े परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! अभी ख्याल में आना मुश्किल पड़ता है कि यह क्या कहते हैं और किस प्रकार! यह पर्याय और पर्याय ऊपर तिरती है और अन्दर में नहीं, अन्दर नित्य एक और अनित्य अनेक.... यह क्या कहते हैं? ऐसा कभी सुना नहीं होगा। आहाहा!

अरे, यह तो वस्तु के एक के शून्य अभी तो यहाँ.... एक के शून्य, अकेला शून्य अलग प्रकार का होता है परन्तु एक होवे और एक के पहला तो शून्य करे और ऐसे शून्य बाद में एक होवे और एक में शून्य होवे वह दूसरे प्रकार का होता है। वह (एक के पहले) गोल चक्कर होता है अकेला शून्य, और यह ऐसे लम्बा-गोल होता है। वैसे यह तो द्रव्य और पर्याय, यह तो एक के शून्य की बात है। समझ में आया? आहाहा! बाद में पर्याय... भाई अलौकिक बातें! नाथ! तेरी प्रभुता का पार नहीं, परन्तु तुझे तेरा पता नहीं। आहाहा! तेरी यह प्रभुता इतनी है कि वाणी में पूरी नहीं आ सके इतनी तेरी प्रभुता अन्दर पड़ी है। भगवान परमात्मा अनन्त गुण का धाम, आहाहा! स्वयं ज्योति सुखधाम। स्वयं अपने से है, कोई उसका कर्ता नहीं है। आहाहा! सुखधाम, वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्थल है, विश्राम करने का वह एक विश्रामघर है। आहाहा! समझ में आया? **पर्यायें द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती, ऊपर ही रहती हैं।**

शुद्ध स्वभाव सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान हैं। ऐसे शुद्ध स्वभाव का,.... आहाहा! **मोहरहित होकर....** मिथ्याभ्रम छोड़कर, आहाहा! पर्यायबुद्धि रखकर है वह मोह है, वह पर्यायबुद्धि मिथ्यात्व है। आहाहा! पर्याय में वह चीज है अवश्य परन्तु उसकी बुद्धि मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्वबुद्धि, पर्यायबुद्धि छोड़कर **मोहरहित होकर जगत....** जगत अर्थात् जगत के जीवों। बाहर से तो ऐसा कहा जाता है न कि यह काठियावाड़ आया। काठियावाड़ आता है? काठियावाड़ के लोग आते हैं। दक्षिण के लोग आते हैं तो कहा जाता है कि यह दक्षिण आया। इसी प्रकार यह जगत कहा परन्तु जगत के लोग कहा

जाता है। आहाहा! हे जगत के प्राणी! अनुभव करो, आहाहा! जहाँ भगवान पूर्णानन्द नित्य ध्रुव अन्दर विराजमान है, उसका अनुभव करो। अनुभव पर्याय है परन्तु द्रव्य का अनुभव करो। जो पर्याय का अनुभव है, वह तो अज्ञान अनादि का है। आहाहा! वस्तु जो त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु है, जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं है। अरे! त्रिकाली द्रव्य ज्ञायकभाव, पर्याय को स्पर्श ही नहीं करता। समझ में आया?

श्रोता : छूता नहीं, स्पर्श नहीं करता तो क्या करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, स्पर्श नहीं करता भिन्न है।

श्रोता : ध्यान किसका करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ध्यान करे पर्याय, तो त्रिकाली का। तो वह पर्याय स्पर्श नहीं करती परन्तु ध्यान उसका (द्रव्य का) करती है। अनुभव की पर्याय द्रव्य को छूती नहीं, तथापि द्रव्य के लक्ष्य से जो अनुभव हुआ, वह आनन्द का अनुभव है। आहाहा! पर्याय का अनुभव वह दुःख का अनुभव था, वह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का अनुभव था तथा आत्मा का अनुभव वह ज्ञानचेतना का अनुभव हुआ। आहाहा! समझ में आया? **जगत...** अर्थात् जगत के प्राणियों। **अनुभव करे; क्योंकि मोहकर्म के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी....** मिथ्याश्रद्धारूपी **अज्ञान जहाँ तक रहता है,....** पर्यायबुद्धि — राग मैं हूँ, पर्याय जितना मैं हूँ — ऐसा अज्ञान रहता है, **तब तक यह अनुभव यथार्थ नहीं होता।** आहाहा!

शरीर, स्त्री, कर्म, परिवार मेरा है, यह तो महाभ्रम अज्ञान है परन्तु पर्यायबुद्धि है, यह अज्ञान है (— ऐसा कहते हैं)। आहाहा!

श्रोता : पर्यायबुद्धि समझ में नहीं आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की अवस्था की बुद्धि अर्थात् पर्यायबुद्धि। यह तो अनादि की चीज है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा, सभा की माँय,...' सीमन्धर परमात्मा, आहाहा! मोहकर्म के उदय से, अनुभव यथार्थ नहीं होता। क्या कहते हैं? जब तक राग, पुण्य, दया, दान, और अनेक प्रकार की जो पर्याय है, उसकी

रुचि रहती है, तब तक अन्तर का यथार्थ अनुभव नहीं होता। जिसकी रुचि है, वहाँ वीर्य काम करता है। राग और पर्याय की रुचि है तो वीर्य वहाँ काम करता है और ऐसी रुचि से अन्तर का अनुभव नहीं हो सकता है। आहाहा!

भावार्थ - यहाँ यह उपदेश है कि शुद्धनय के विषयरूप आत्मा का अनुभव करो। बहुत संक्षिप्त कर दिया। सम्यग्ज्ञान, जो शुद्धनय है, जिसका विषय ज्ञायक त्रिकाल है, उसका अनुभव करो। यह सार दिया। समझ में आया? कठिन बात है परन्तु इसका निर्णय तो करे, पहले ज्ञान में निर्णय तो करे कि मार्ग यह है। आहाहा!

कलश - १२

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य पुनः कहते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि ऐसा अनुभव करने पर आत्मदेव प्रगट प्रतिभासमान होता है —

(शार्दूलविक्रीड़ित)

भूतं भांतमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बंधं सुधी-
र्यद्यंतः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः॥ १२॥

श्लोकार्थ : [यदि] यदि [कः अपि सुधीः] कोई सुबुद्धि (सम्यग्दृष्टि) जीव [भूतं भान्तम् अभूतम् एव बन्धं] भूत, वर्तमान और भविष्य — तीनों काल में कर्मों के बन्ध को अपने आत्मा से [रभसात्] तत्काल — शीघ्र [निर्भिद्य] भिन्न करके तथा [मोहं] उस कर्मोदय के निमित्त से होनेवाले मिथ्यात्व (अज्ञान) को [हठात्] अपने बल से (पुरुषार्थ से) [व्याहत्य] रोककर अथवा नाश करके [अन्तः] अन्तरंग में [किल अहो कलयति] अभ्यास करे — देखे तो [अयम् आत्मा] यह आत्मा [आत्म-अनुभव-एक-गम्य-महिमा] अपने अनुभव से ही जाननेयोग्य जिसकी प्रगट महिमा है ऐसा [व्यक्तः] व्यक्त (अनुभवगोचर), [ध्रुवं] निश्चल [शाश्वतः]

शाश्वत, [नित्यं कर्म-कलंक-पंक-विकलः] नित्य कर्मकलंक-कर्दम से रहित [स्वयं देवः] स्वयं ऐसा स्तुति करने योग्य देव [आस्ते] विराजमान है।

भावार्थ : शुद्धनय की दृष्टि से देखा जाये तो सर्व कर्मों से रहित चैतन्यमात्र देव अविनाशी आत्मा अन्तरंग में स्वयं विराजमान है। यह प्राणी — पर्यायबुद्धि बहिरात्मा —उसे बाहर ढूँढता है, यह महा अज्ञान है।

कलश-१२ पर प्रवचन

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य पुनः कहते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि ऐसा अनुभव करने पर आत्मदेव प्रगट प्रतिभासमान होता है। आहाहा!

भूतं भांतमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बंधं सुधी-
र्यद्यंतः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः॥ १२॥

रभसात्... देखा? **रभसात्**... आया यहाँ। उस प्रज्ञाछैनी में **रभसात्....** (शब्द) आता है। वहाँ एक समय लिया था। जैसे इसने यह **रभसात् — शीघ्र...** आहाहा! तू भगवान देव, शाश्वत् अन्दर है प्रभु! तेरी दिव्य शक्ति का पार नहीं है। पता कैसे पड़े? आहाहा! दो बीड़ी-सिगरेट ठीक से पीवे तो भाईसाहब को दस्त उतरे — ऐसे तो अपलक्षण। अब इसे ऐसा कहना कि यह देव है। है? साठ वर्ष में पुत्र हो, सन्तानहीनता मिटे, तब इसके लड़के को ऐसे प्रेम करे, आहाहा! ओहोहो! क्या है परन्तु यह, तेरा पागलपन क्या है? और उसमें पाँच-दस लाख की आमदनी हुई हो तो आज लापसी बनाओ। बड़ी आमदनी हो गयी है... धूल में भी नहीं। अब पाप की आमदनी है, सुन न अब। आहाहा!

यदि कोई सुबुद्धि.... आहाहा! है? सुबुद्धि, ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, आहाहा! **'भूतं भान्तम् अभूतम् एव बन्धं' जीव....** भगवान आत्मा **भूतकाल....** विगत काल **वर्तमान और भविष्य — तीनों काल के कर्म के बन्ध को अपने आत्मा से...** तीनों काल के राग के सम्बन्ध को अपने आत्मा से **तत्काल — शीघ्र भिन्न करके....** आहाहा! यह राग

और पुण्य, दया, दान आदि विकल्प और आकुलता यह सब है उससे, आहाहा! **रभसात्....** तीनों काल की विकारी पर्यायों से, आहाहा! अपने को शीघ्र भिन्न करके... जैसे गेहूँ में से कंकर निकाल देते हैं, गेहूँ कहते हैं न गेहूँ? कंकर निकालते हैं, उसी प्रकार पुण्य और पाप की पर्याय, मैल कंकर है, उससे भिन्न गेहूँ है। ऐसे आनन्दकन्द प्रभु है, आहाहा! उसकी दृष्टि करो तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा, धर्म की पहली सीढ़ी — शुरुआत वहाँ से होगी। आहाहा!

श्रोता : महाराज! आप पुण्य परिणाम को मैल क्यों कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मैल है या नहीं, क्या है? मलिन है न, अशुचि है न, जड़ है न, दुःख है न (समयसार, ७२ गाथा)।

श्रोता : जड़ कहो परन्तु मैल नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस जड़ का अर्थ क्या? चैतन्य प्रकाश के नूर का उसमें अभाव है। राग, दया, दान आदि भाव हैं, उनमें चैतन्य के अंश का अभाव है; इसलिए जड़ है। आहाहा!

श्रोता : मैल नहीं कहना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैल है, अशुचि कहा न? अशुचि कहो या मैल कहो या विभाव कहो, अधर्म कहो। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति प्रभु, उसे यह त्रिकाली जो विकार है, उससे भिन्न-दूर कर दे। आहाहा! त्रिकाली चीज की दृष्टि करके त्रिकाल में रहनेवाली विकृत अवस्था को दूर कर दे। आहाहा! भाषा तो कैसी? आहाहा! भूतकाल, वर्तमान और भविष्य में रहनेवाली विकृत अवस्था को त्रिकाली ज्ञायकभाव का आश्रय करके छोड़ दे, भिन्न कर दे। आहाहा! यह पुरुषार्थ से होता है। समझ में आया?

कोई कहता है कि तुम तो क्रमबद्ध मानते हो तो उसमें यह (पुरुषार्थ) कहाँ आया? आहाहा! अरे सुन तो सही प्रभु! क्रमबद्ध मानने में ही अकर्तापना इस प्रकार आ गया। समझ में आया? जिस समय में होगा, वह होगा, क्रमबद्ध! परन्तु वह होगा, वह होगा किसे? जिसने ज्ञायकभाव का निर्णय किया और राग का अकर्तापना हुआ, उसको क्रमबद्ध का निर्णय यथार्थ है। राग का कर्ता हूँ और क्रमबद्ध मानना दो चीज नहीं रहती। यह क्या कहा? आहाहा! विकल्प का कर्ता हो और क्रमबद्ध माने — ऐसी दो चीज नहीं रह सकती। यह क्रमबद्ध माननेवाला राग का अकर्ता होकर ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अनजान व्यक्ति को तो नया लगता है। यह किस प्रकार की

(बात)! जैन परमेश्वर का मार्ग यह होगा? अब हम तो इच्छामि ईर्यावीर्या तस्य मिच्छामि दुक्खणं... लोगस्स में एवमये अभिथुआ (ऐसा आता है)। कुछ नहीं होता बापू! आहाहा! यह तो शब्द जड़, भाषा जड़, विकल्प उठे वह भी जड़, उनसे तो भगवान आत्मा भिन्न, नित्य एकरूप है। आहाहा! है?

आहा! **अपने आत्मा से तत्काल — शीघ्र भिन्न करके तथा उस कर्मोदय के निमित्त से होनेवाले....** निमित्त से होनेवाले, हाँ! है तो अपने से होता है मोह; कर्म तो निमित्त है। **होनेवाले मिथ्यात्व (अज्ञान) को....** जो भ्रमणा है-राग मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ, पर्याय जितना मैं हूँ — ऐसा जो मिथ्यात्वभाव है, उसको **अपने बल से (पुरुषार्थ से) रोककर....** देखो! अपने बल से। स्वभावसन्मुख होने के अपने बल से रोककर **पुरुषार्थ से रोककर अथवा नाश करके अन्तरंग में अभ्यास करे — देखे....** अन्तर में राग से भिन्न अभ्यास करके देखे **तो यह आत्मा अपने अनुभव से ही जाननेयोग्य जिसकी प्रगट महिमा है....** प्रगट महिमा है। अन्दर पड़ी है। आहाहा! अमृत का सागर उछलता है अन्दर! अतीन्द्रिय अमृत का सागर भगवान आत्मा.... आहाहा! **जिसकी प्रगट महिमा है ऐसा व्यक्त (अनुभवगोचर), निश्चल....** यह शाश्वत्-शाश्वत् वस्तु प्रभु अन्दर है, वह **नित्य कर्मकलंक-कर्दम से रहित स्वयं ऐसा स्तुति करने योग्य देव....** आहाहा! स्तुति करने योग्य यह भगवान आत्मा है। आहाहा! उसको स्वीकार करना —सत्कार करना, वह स्तुति है। वह स्तुति करना, देव की स्तुति है, द्रव्य की स्तुति है। आहाहा!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)